International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(1): 32-35

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(1): 31-35
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 26-11-2015
Accepted: 28-12-2015

संदीप कुमार
शोधच्छात्र (पीएच.डी.)
संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–110007

Correspondence
संदीप कुमार
शोधच्छात्र (पीएच.डी.)
संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–110007

उपचार

संदीप कुमार

'उपचार' शब्द 'उप' उपसर्ग–पूर्वक 'चर गतिभक्षणयोः' 'चर गतौ' 'चर संशये' धातुओं से घञ् प्रत्यय के प्रयोग से बनता है। इस शब्द का प्रयोग वाङ्मय में कई अर्थों में देखा जाता है। (1) उपचार–चिकित्सा[1], (2) उपचार–पूजाङ्ग (3) लाक्षणिक शब्द प्रयोग[2] (4) सेवा[3] (5) व्यवहार आदि।

न्यायदर्शन में उपचार –

विभिन्न दार्शनिक सन्दर्भों में आये हुए 'उपचार' शब्द पर विचार करते हैं। इसका प्रयोग प्रथमतः न्यायसूत्र में हुआ है– "सहचरण–स्थान–तादर्थ्य– वृत्त–मान–धारण–सामीप्य–योग–साधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मण–मञ्च–कट–राज–सक्तु– चन्दन–गङ्गा– शाकटान्न–पुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचारः।"[4]

अर्थात् सहचरण आदि सम्बन्धों से ब्राह्मणादि अर्थों में उपचार होता है। जो कि 'अतद्भाव' में 'तदुपचार' है। इसको स्पष्ट करते हुए वात्स्यायन भाष्य में कहा गया है कि जो शब्द जिस अर्थ का वाचक नहीं होता, उस शब्द से उस अर्थ के अभिधान को उपचार कहते हैं।[5]

भाष्यकार वात्स्यायन 'तेन शब्देन अभिधानम्' ऐसा प्रयोग करते हैं। 'अभिधान' का अर्थ 'अभिधा द्वारा प्रतिपादन' ऐसा होता है। इससे स्पष्ट होता है कि वात्स्यायन के समक्ष शब्दवृत्तियों का वैसा विभाजन नहीं था, परन्तु उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उपचार पृथक् रूप में मान्य था। सूत्र में उक्त पदों का आशय यह है कि वैसा अर्थ न होने पर भी वैसे अर्थ में शब्द का गमन या उपचार हो जाता है। यह प्रसिद्ध अर्थ से अप्रसिद्ध अर्थ में शब्द का गमन या उपगमन है।

वात्स्यायन ने सूत्र द्वारा उपर्युक्त सम्बन्धों और उदाहरणों को स्पष्ट किया है–

1) **सहचरणात्–** 'यष्टिकां भोजयेति यष्टिकासहचरितो ब्राह्मणोऽभिधीयत इति।' अर्थात् 'यष्टि को भोजन कराओ' इस कथन में यष्टिधारी ब्राह्मण का अभिधान सहचार रूप सम्बन्ध के कारण हुआ है।
2) **स्थानात्–** 'मंचाः क्रोशन्ति इति मंचस्थाः पुरुषा अभिधीयन्ते।' अर्थात् "मंच बोल रहे हैं" कहने से मंचस्थ पुरुषों का अभिधान स्थानरूप आधाराधेयभाव सम्बन्ध से देखा जाता है।
3) **तादर्थ्यात्–** 'कटार्थेषु वीरणेषु व्यूह्यमानेषु कटं करोतीति भवति।' अर्थात् चटाई बुनते समय चटाई के उपादानभूत तृणादि के लिए कहा जाता है "चटाई बुन रहा है" यहाँ तादर्थ्य सम्बन्ध से तृणादि के अर्थ में कट या चटाई का प्रयोग है।
4) **वृत्तात्–** 'यमो राजा कुबेरो राजेति तद्वद् वर्तत इति।' अर्थात् राजा को यम या कुबेर इसलिए कहा जाता है कि वह तद्वत् दण्डधरता या दानशीलता का व्यवहार करता है। यहाँ वृत्त अथवा आचरण के सम्बन्ध से वैसा प्रयोग देखा जाता है।
5) **मानात्–** 'आढकेन मिताः सक्तव आढक सक्तव इति।' अर्थात् आढक से नपे हुए सत्तू को आढकसत्तू मान या नाप के सम्बन्ध से कहा जाता है।
6) **धारणात्–** 'तुलायां धृतं चन्दनं तुलाचन्दनमिति।' अर्थात् तुला पर रखे चन्दन को तुलाचन्दन कहने में धारण सम्बन्ध से उपचार है।
7) **सामीप्यात्–** 'गङ्गायां गावश्चरन्तीति देशोऽभिधीयते सन्निकृष्टः।' अर्थात् गङ्गा पर गायों के चरने में समीपवर्ती देश का अभिधान होने से सामीप्य सम्बन्ध है। जिसमें गङ्गा पद प्रवाह अर्थ न देकर समीपवर्ती भूभाग के अर्थ में उपचरित है।

---

1 शिशिरोपचार। – दशकुमारचरित 15.22
2 क्वचिद् तादर्थ्यादुपचारः इन्द्रार्था स्थूणा इन्द्र इति। – काव्यप्रकाश, पृष्ठ 66
3 स मे चिरायास्खलितोपचारम्। – रघुवंश 5/20
4 न्याय सू. 2/2/61, पृष्ठ 123
5 अतद्भावेऽपि तदुपचारः इति अतच्छब्दस्य तेन शब्देनाभिधानमिति। – वहीं, भाष्य

8) **योगात्–** 'कृष्णेन रागेण युक्तः शाटकः कृष्ण इत्यभिधीयते।' अर्थात् कृष्ण वर्ण से युक्त वस्त्र को कृष्ण कहने में योग सम्बन्ध से उपचार है।
9) **साधनात्–** 'अन्नं प्राणाः' अर्थात् प्राणधारण के साधन अन्न को प्राण कहने में साधनत्व सम्बन्ध है।

व्याकरण –

महाभाष्यकार पतंजलि 'उपचार' शब्द की व्यवस्था देते हुए लिखते हैं– 'कूलं पिपतिषतीति अचेतनेऽपि कूले चेतनवदुपचारो दृश्यते।'[6] अर्थात् 'किनारा गिरना चाहता है' इस वाक्य में अचेतन किनारे पर चेतन के समान उपचार देखा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि सादृश्य–मूलक स्थलों में 'उपचार' के प्रयोग अधिक मान्य रहे है।
भर्तृहरि ने क्रियानिरूपण के सन्दर्भ में प्रश्न उपस्थित किया है कि क्षणिक क्रियाओं के समुदाय–क्रम को क्रिया कहने में उपचिरत प्रयोग माना जाए या नहीं? इसका समाधान प्रस्तुत करते हैं–

व्यवहारस्य सिद्धत्वान्न चेयं गुणकल्पना।
उपचारो हि मुख्यस्य संभवादवतिष्ठते।।[7]

अर्थात् क्षणिक क्रिया क्रम के समुदाय के लिए क्रिया का व्यवहार प्रसिद्ध है, अतः ऐसे प्रयोगों में गुणवृत्तिरूप उपचार नहीं हो सकता; क्योंकि मुख्यार्थ की सम्भावना में ही उपचार की व्यवस्था है। तात्पर्य यह कि क्रिया समुदाय ही क्रिया पद का मुख्य अर्थ है, क्योंकि वही व्यवहार सिद्ध है। व्यवहार की अनुपपत्ति होने पर उपचार होता है।

मीमांसा

मीमांसाश्लोकवार्त्तिककार कुमारिलभट्ट ने लिखा है–

उपचारादनर्थत्वं फलद्वारेण वर्ण्यते।[8]

अर्थात् श्येन आदि यज्ञों के फलनिरूपण द्वारा उपचार से उनकी अनर्थता प्रतिपादित है। तात्पर्य यह है कि वेद में पापफलों का वर्णन किया गया है, जिससे अनिष्ट होने का औपचारिक अर्थ निकलता है।
जाति से पृथक् व्यक्ति के पदार्थत्व के विवेचन में प्रभाकर ने उपचार शब्द का प्रयोग किया है–
भेदप्रत्ययेऽपि अभेदोपचारो दृष्टः कुन्तान् प्रवेशयेति। सत्यमभेदोपचारः। न पुनरयं गौरित्यत्रोपचारबुद्धिर्लौकिकानाम्। तस्मादुपचरितोऽयं प्रत्यय इति न शक्यते वक्तुम्।[9]
इस कथन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं– इस प्रकरण में पूर्वपक्षी कहता है कि गौ और गोत्व जाति में उपचार होता है। तर्क देता है जैसे– भेद होने पर भी 'कुन्तान् प्रवेशय' में अभेद प्रत्यय होता है, वैसे ही यहाँ है। प्रभाकर कहते हैं कि यहाँ सत्य ही अभेदोपचार है, किन्तु 'अयं गौः' के साथ यह स्थिति नहीं होती।
ऋजुविमलाकार शालिकनाथमिश्र इस प्रसंग की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि यद्यपि प्रतीति में भेद ही प्रकाशित होता है, फिर भी उपचार से समानाधिकरण वाले शब्दों का प्रयोग मात्र होता है जैसे 'कुन्तान् प्रवेशय' में पुरुष समानाधिकरण वाले कुन्त शब्द का प्रयोग है किन्तु प्रतीति में तादात्म्य नहीं होता। उत्तर देते हैं– सत्य ही 'कुन्तान् प्रवेशय' में उपचार है, किन्तु 'अयं गौः' में अभेदोपचार बुद्धि नहीं होती; क्योंकि यहाँ गो व्यक्ति और गोत्व जाति में तादात्म्य की प्रतीति होती है। उपचार तो शब्द प्रयोग मात्र है; न कि बुद्धि में तादात्म्यावभास। इसलिए यह प्रत्यय उपचरित है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यय का उपचार नहीं होता बल्कि उपचार शब्द प्रयोगमात्र का होता है।[10]

1) पदों का सामानाधिकरण्य और प्रत्ययगत अर्थभेद उपचार का अनिवार्य भाग है।
2) उपचार शब्द प्रयोग मात्र पर प्रतिष्ठित व्यवहार की विधा है, जो प्रत्यय में भेद को प्रभावित नहीं करती।
3) प्रत्यय में तादात्म्य होने पर उपचार की प्रवृत्ति अमान्य है, अन्यथा शक्ति और उपचार में अन्तर शून्य हो जाएगा।
4) वाच्य तथा औपचारिक अर्थ में भेद होने पर ही सम्बन्ध की स्थापना की जा सकती है जो उपचारबीज है।
5) प्रत्यय में अभेद होने पर तात्पर्यानुपपत्तिरूप बीज का अभाव होने से उपचार नहीं होता, शक्ति का ही प्रसार रहता है।

वेदान्त

वेदान्त दर्शन में भी 'उपचार' के सुपुष्कल प्रयोग प्राप्त होते हैं, कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–
उपर्युक्त प्राभाकर मत में प्रत्ययगत भेद और शब्दगत अभेद की स्थिति में उपचार की व्यवस्था दी है परन्तु आगमादि द्वारा पारमार्थिक अभेद स्थापित होने पर व्यावहारिक प्रत्यय और शब्दप्रयोग में समानरूप से भेदोपचार हो सकता है– ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य की भामती टीका में आचार्य वाचस्पति मिश्र एक स्थान पर लिखते हैं "उपनिषदें अद्वैत में शुरू होकर उसी का व्याख्यान करते हुए उसी में उपसंहृत हो जाती हैं अतः वे अद्वैत पर हैं और जो तत्पर होता है वह औपचारिक नहीं होता।"[11]
साहित्य–शास्त्र में उपचार शब्द का प्रयोग आचार्यों ने लक्षणा प्रसंग में विभिन्न अर्थों में किया है।

मुकुलभट्ट की दृष्टि में उपचार

आचार्य मुकुलभट्ट लक्षणा के मुख्यतः दो भेद करते हैं– शुद्धा और उपचार मिश्रा।[12] उपचारमिश्रा लक्षणा के सन्दर्भ में मुकुलभट्ट कहते हैं कि उपचारमिश्रा लक्षणा वहाँ होती है, जहाँ कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के अर्थ में उपचरित (प्रयुक्त) होती है।[13] उदाहरणरूप में 'गौर्वाहीकः' वाक्य को देकर व्याख्यायित करते हैं कि यहाँ 'गो' शब्द को वाहीक शब्द के साथ सामानाधिकरण्य में रखा है, जिस कारण इन्हें अभिन्नार्थक होना चाहिए। किन्तु अभिन्नार्थक न होने के कारण इन शब्दों का सामानाधिकरण्य अनुपपन्न हो जाता है, इस कारण मुख्यार्थबाध उपस्थित हो जाता है। तब गो शब्द गोगत–जाड्यमान्द्यादिगुण और उनके सदृश वाहीकगत जाड्यमान्द्यादि गुणों को लक्षणा के द्वारा ज्ञापित कराता है। तब वही 'गो' शब्द गोगत जाड्यमान्द्यादिगुणों के सदृश जाड्यमान्द्यादिगुण–युक्त वाहीक में उपचरित होता है। इस कारण इसे उपचारमिश्रालक्षणा कहते हैं।[14]

---

6 महाभाष्य, पा.सू. 4/2/86, पृष्ठ 660

7 वाक्यपदीय 3/8/13, पृष्ठ 14

8 श्लो.वा. – चोदनासूत्र 2/17

9 बृहती– 1/1/5, पृष्ठ 51

10 यद्यपि प्रतीतौ भेद एव भाति, तथापि समानाधिकरणशब्दप्रयोगमात्रं भवत्येवोपचारात् यथा पुरुषसमानाधिकरणः कुन्तशब्दप्रयोगः, न पुनः प्रतीतौ तादात्म्यावभासः। उत्तरम्– सत्यमभेदोपचारः– कुन्तान् प्रवेशय इति न पुनः अयं गौः इत्यत्र लौकिकानामभेदोपचारबुद्धिः, प्रत्यये तादात्म्यावभासात्, उपचारो हि शब्दप्रयोगमात्रम्, न बुद्धौ तादात्म्यसंवित्तिः। तस्मादुपचरितोऽयं प्रत्यय इति न शक्यते वक्तुम्। प्रत्ययस्योपचारितत्वाभावात्, शब्दप्रयोगमात्रं ह्युपचरितो भवति। – बृहती 1/1/5 पर ऋजुविमला व्याख्या।

11 उपनिषदश्चाद्वैतोपक्रमतत्परामर्शतदुपसंहारा अद्वैतपरा एव युज्यन्ते। न च यत्परास्तदौपचारिकं युक्तम्। – ब्र.सू., शां.भा., भामती 2/3/43, पृष्ठ 557

12 शुद्धोपचारमिश्रत्वाल्लक्षणा द्विविधा मता। – अभिधा.का. 2, पृष्ठ 11

13 उपचारमिश्रा तु यत्र वस्त्वन्तरं वस्त्वन्तरे उपचर्यते। – अभिधा., पृष्ठ 11

14 अत्र हि गो शब्दो वाहीकशब्देनानुपपद्यमानसामानाधिकरण्याद् बाधितमुख्यार्थः सन् गोगता ये जाड्यमान्द्यादयो गुणाः, तत्सदृशवाहीकगत–जाड्यमान्द्यादिगुणलक्षणाद्वारेण गोगतजाड्यमान्द्यादिगुणसदृशजाड्यमान्द्यादिगुणोपेते वाहीक उपचरितः। तेनेयमुपचारमिश्रा लक्षणा। – अभिधा., पृष्ठ 11

पुनः वे शुद्धा के दो भेद बताते हैं– उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा। उपचारमिश्रा लक्षणा के चार भेद बताते हुए उपचार को ही चार प्रकार का कहा है– शुद्धोपचार और गौणोपचार का आरोप और अध्यवसान के द्वारा भेद होने पर उपचार चार प्रकार का हो जाता है।[15]

मुकुलभट्ट ने उपचार को पहले दो प्रकार का बताया शुद्ध और गौण। आचार्य मुकुलभट्ट ने शुद्ध और गौण उपचार का भेदक तत्त्व उपमानोपमेयगत– गुणों को बताया है वे शुद्धोपचार के विषय में कहते हैं कि जहाँ मूलभूत उपमानोपमेय भाव के अभाव से उपमानगत गुणों के सदृश गुणों से होने वाली लक्षणा नहीं होती अपितु कार्यकारणभावादि सम्बन्ध से लक्षणा के द्वारा कोई वस्तु अन्य वस्तु के लिए प्रयुक्त होती है।[16] जैसे 'आयुर्घृतम्'। इस वाक्य में आयु का कारण घृत है, उस पर उसके कार्य 'आयुष्ट्व' और तद्वाचक शब्द 'आयु' इन दोनों का उपचार तद्गत कार्यकारण भाव के आधार पर हुई लक्षणा के द्वारा हुआ है। इसलिए यह उपचार शुद्ध उपचार है।

गौणोपचार के विषय में मुकुलभट्ट कहते हैं कि "जहाँ मूलभूत उपमानोपमेयभाव के आधार पर उपमानगत गुणों के समान गुणों के सम्बन्ध से हुई लक्षणा के आधार उपमेय पर उपमानवाचक शब्द और उसका अर्थ, इन दोनों का अध्यारोप होता है। यह उपचार गुणों के आधार पर होता है इसलिए इसे गौणी कहते हैं।[17] जैसे 'गौर्वाहीकः', यहाँ गोगत जाड्यमान्द्यादि गुणों के सदृश जाड्यमान्द्यादि गुणों के योग से वाहीक में गो शब्द और गोत्व का उपचार होता है।

मम्मट के मत में 'उपचार'

मम्मट ने अपने दोनों ग्रन्थों (काव्यप्रकाश और शब्दव्यापारविचार) में 'उपचार' शब्द का प्रयोग दो स्थानों पर किया है। प्रथम– उपादान लक्षणा और लक्षण–लक्षणा की व्याख्या के बाद लिखते हैं– 'उभयरूपा चेयं शुद्धा। उपाचारेणामिश्रितत्वात्'[18] तथा द्वितीय– लक्षणाव्याख्यान के अन्त में लिखते हैं– 'क्वचिद् तादर्थ्यादुपचारः। इन्द्रार्था स्थूणा इन्द्र इति।'[19]

इनमें से प्रथम स्थान पर उपादान एवं लक्षण लक्षणा को केवल शुद्धा बताया है तथा उसका कारण बताया है उपचार का अमिश्रण। इस प्रसङ्ग में आचार्य मम्मट के टीकाकारों के विचार द्रष्टव्य हैं–

1) माणिक्यचन्द्र सङ्केत टीका में लिखते हैं– "जैसे 'गौर्वाहीकः' इस वाक्य में किसी वस्तु के अर्थ में अन्य वस्तु उपचरित होती है, ऐसा यहाँ नहीं है।"[20] अतः ये शुद्धा हैं।
2) सरस्वतीतीर्थ 'बालचिन्तानुरंजनी' में उपचार की दो परिभाषा करते हैं– 'विभिन्नता से प्रतीत होने वाली दो (वस्तुओं) का एक पर आरोपण उपचार है।'[21] तथा गुणों का योग होना उपचार है उससे जो अमिश्रित होती है; वह शुद्धा होती है।[22] सरस्वतीतीर्थ की इन दोनों परिभाषाओं में किंचित् भेद दिखाई देता है। दोनों परिभाषाओं पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि पहली परिभाषा में अन्य टीकाकारों की तरह दो भिन्न–भिन्न पदार्थों का एक पर आरोपण को उपचार माना है किन्तु इतना मात्र कहने से सारोपा साध्यवसाना भेद वाली शुद्धा के उदाहरण आयुर्घृतम् आदि भी उपचार से युक्त हो जाते, अतः उन्होंने दूसरी परिभाषा दी जिसमें कि उपचार को गुणों के योग से होने के कारण गौणी के क्षेत्र में बाँध दिया जो, कि सम्भवतः आचार्य मम्मट को भी अभीष्ट है।

दर्पणटीका में आचार्य विश्वनाथ लिखते हैं– 'अत्यन्त भिन्न दो (पदार्थों) का अत्यन्त सादृश्य की महिमा से भेद का स्थगन मात्र 'उपचार' कहलाता है।'[23]

आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा से यह स्पष्ट नहीं होता कि अत्यन्त भिन्न क्या होता है इसलिए साहित्यदर्पण में इस अस्पष्टता को सुधारते हुए उन्होंने उपचार की परिभाषा में 'विशकलितयोः' पद के अनन्तर कोष्ठक में (पदार्थयोः) शब्द रखा और 'स्थगनम्' पद के साथ 'मात्र' शब्द का प्रयोग किया जिससे स्पष्ट हुआ की आचार्य विश्वनाथ के मत में अत्यन्त भिन्न पदार्थों के भेद का अतिसादृश्य के कारण स्थगन मात्र (केवल) उपचार है। अर्थात् वास्तव में वे भिन्न है फिर भी क्षण मात्र को भेद का स्थगन सा जो हुआ वही उपचार है।

चक्रवर्त्तिकवि सम्प्रदायप्रकाशिनी में लिखते हैं– "'गौर्वाहीकः' इत्यादि के समान भेद रूप से प्रतीत होने वाली वस्तुओं का एक पर आरोप करना उपचार है।"[24]

सुदर्शन आचार्य विस्तारिका टीका में उपचार के विषय में विशेष बात कहते हैं कि "लक्ष्य और लक्षक रूप में उपस्थित दो पदों और अर्थों की अभेद रूप से प्रतीति ही उपचार है।"[25]

श्रीवत्स सारबोधिनी में स्पष्ट रूप से लिखते हैं– "सादृश्यसम्बन्ध से होने वाली प्रवृत्ति उपचार कहलाती है।"[26]

आचार्य मुकुलभट्ट और मम्मट के 'उपचार' की तुलना –

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है, कि आचार्य मुकुलभट्ट उपादान और लक्षण को शुद्धा का भेद मानते हैं। पुनः उपचारमिश्रा लक्षणा के चार भेद मानते है–

(1) सारोप–शुद्धोपचार
(2) साध्यवसान–शुद्धोपचार
(3) सारोप–गौणोपचार
(4) साध्यवसान–गौणोपचार

आचार्य मुकुलभट्ट स्पष्ट लिखते हैं– "उपचारमिश्रा यत्र वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरमुपचर्यते।" अर्थात् जहाँ किसी वस्तु के लिए अन्य वस्तु का व्यवहार किया जाए वहाँ लक्षणा उपचार से युक्त होती है। चाहे वह व्यवहार सादृश्य अथवा सादृश्येतर (कार्यकारणभावादि) किसी भी सम्बन्ध से क्यों न हो।

परन्तु आचार्य मम्मट ने कहीं भी उपचार शब्द को परिभाषित नहीं किया उन्होंने उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा को परिभाषित करके उन्हें शुद्धा का ही भेद बताने का कारण उपचार के अमिश्रण को बताया है।[27] ये कहने के बाद भी आचार्य मम्मट ने शुद्धा और गौणी रूप से लक्षणा के भेद बताकर इनके सारोपा और साध्यवसाना रूप में चार भेद किए हैं। इसके अनन्तर उन्होंने गौणी के प्रयोजक सादृश्य सम्बन्ध से इतर शुद्धा के प्रयोजक सम्बन्धों की चर्चा करते हुए– 'क्वचिद् तादर्थ्यादुपचारः' में 'उपचार' शब्द का प्रयोग किया है।

---

15 आरोपाध्यवसानाभ्यां शुद्धगौणोपचारयोः।
प्रत्येकं भिद्यमानत्वादुपचारश्चतुर्विधः। – अभिधा., पृष्ठ 15

16 तत्र शुद्धो यत्र मूलभूतस्योपमानोपमेयभावस्याभावेनोपमानगतगुणसदृशगुणयोगलक्षणासंभवात्, कार्यकारणभावादिसम्बन्धाल्लक्षणया वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरमुपचर्यते, यथा– आयुर्घृतमिति। – अभिधा., पृष्ठ 16

17 गौणः पुनरुपचारो यत्र मूलभूतोपमानोपमेयभावसमाश्रयेणोपमानगतगुणसदृशगुणयोगलक्षणां पुरस्सरीकृत्योपमेय उपमानशब्दस्तदर्थश्चाध्यारोप्यते। स हि गुणेभ्यो आगतत्वाद् गौणशब्देनाभिधीयते। यथा– गौर्वाहीक इति। – अभिधा., पृष्ठ 16

18 का.प्र., पृ. 57, शब्द., पृ. 9

19 का.प्र., पृ. 66, शब्द., पृ. 14

20 यथा 'गौर्वाहीकः' इत्यत्र वस्त्वन्तरमुपचर्यते न तथा, तत्रेतिभावः। – का.प्र. (सम्पा. ज्योत्स्ना मोहन), प्रथम भाग, पृष्ठ 265

21 'भिन्नत्वेन प्रतीयमानयोरैक्यारोपणमुपचारः।' – वही, पृष्ठ 267

22 'उपचारो नाम गुणयोगः तदमिश्रत्वं शुद्धत्वम्।' – काप्र. (ज्यो. मो.), पृष्ठ 267

23 'अत्यन्तं विशकलितयोः पदार्थयोः सादृश्यातिशयमहिम्ना भेदप्रतीतिस्थगनमुपचारः।' – वही, पृष्ठ 272

24 'गौर्वाहीक' इत्यादिवद् भेदेन प्रतीतयोरैक्यारोपणमुपचारः। – वही, पृष्ठ 275

25 'लक्ष्यलक्षकोपस्थापकपदद्वयार्थद्वयाभेदप्रतीतिरुपचारः।' वही, पृष्ठ 279

26 'सादृश्यसम्बन्धेन प्रवृत्तिरुपचारः।' – वही, पृष्ठ 281

27 उभयरूपा चेयं शुद्धा उपचारेणामिश्रितत्वात्। – का.प्र., पृष्ठ 57

'उपचार' के विषय में स्वमन्तव्य स्पष्ट न करने से मम्मट के टीकाकार 'उपचार' को परिभाषित करते हुए कई भागों में विभक्त से दिखाई देते हैं।

1) भिन्न–भिन्न प्रतीत होने वाली दो वस्तुओं में से एक का अन्य पर आरोपण उपचार होता है। इसको मानने वाले बालचित्तानुरंजनीकार सरस्वतीतीर्थ, सारबोधिनीकार, सम्प्रदायप्रकाशिनीकार और मधुमतीकार हैं।
2) अत्यन्त भिन्न वस्तुओं का सादृश्यातिशय के कारण भेद प्रतीति का स्थगन उपचार हैं इसे मानने वाले आचार्य विश्वनाथ और श्रीवत्सशर्मा आदि हैं।
3) सङ्केतकार माणिक्यचन्द्र का मानना है कि 'गौर्वाहीकः', यहाँ किसी वस्तु के लिए अन्य वस्तु का उपचार (प्रयोग) है।
4) बालचित्तानुरंजनीकार एक और परिभाषा करते हैं कि गुणों का योग उपचार कहलाता है।
5) विस्तारिकाकार कहते हैं– "लक्ष्य और लक्षक को उपस्थापित करने वाले दो शब्द और उनके दो अर्थों में होने वाले अभेद की प्रतीति को उपचार कहते हैं।"

उपर्युक्त पाँच मत तीन बिन्दुओं में संग्रहीत हो सकते हैं–

1) गुणों का योग उपचार है।
2) सादृश्य सम्बन्ध के आधार पर दो भिन्न वस्तुओं का भेदस्थगन उपचार है।
3) अन्यवस्तु के लिए अन्य वस्तु का प्रयोग उपचार है।

निष्कर्ष

'उपचार' के विषय में मम्मट उलझाव में दिखते हैं जबकि मुकुलभट्ट एक स्पष्ट धरणा को मन में रखे हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि यह प्रश्न विचारणीय है कि आचार्य मुकुलभट्ट जब वस्त्वन्तर पर वस्त्वन्तर के प्रयोग को उपचार मानते हैं तो 'गङ्गाया घोषः' उदाहरण, जिसमें कि भिन्न वस्तु 'तट' के लिए भिन्न वस्तु 'गङ्गा' का प्रयोग किया जा रहा है; इस वाक्य को लक्षण लक्षणा के उदाहरण में उद्धृत करके उपचार से पृथक् क्यों किया? जबकि मूलभूत उपमान–उपमेय के अभाव से उपमानगत गुणों के समान गुण–योग के अभाव से होने वाला कार्य–कारणादि सम्बन्ध द्वारा वस्त्वन्तर में वस्त्वन्तर रूप शुद्धोपचार[28] यहाँ भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. काव्यप्रकाश, मम्मट (आचार्य विश्वेश्वर), ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, 2013
2. अभिधावृत्तमातृका, मुकुलभट्ट (आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011
3. काव्यप्रकाश, मम्मट (ज्योत्स्ना मोहन), नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1995
4. साहित्यदर्पणम्, विश्वनाथ (शालिग्राम शास्त्री), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1997
5. रसगङ्गाधर, जगन्नाथ, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2011
6. त्रिवेणिका, आशाधर भट्ट, ब्रह्ममित्र अवस्थी, इन्द्र प्रकाशन, दिल्ली
7. महाभाष्य, महर्षि पतंजलि, हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल
8. वाक्यपदीयम्, भोजराज, Deccon College Pune, 1976
9. The nyāya sutras with vātsyāyana bhāsya, सतगुरुपल्लि केशव, दिल्ली, 1984
10. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, जगदीश शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980

[28] तत्र शुद्धो यत्र मूलभूतस्योपमानोपमेयभावस्याभावेनोपमानगतगुणसदृशगुणयोगलक्षणासंभवात् कार्यकारणभावादिसम्बन्धात् लक्षणया वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरमुपचर्यते यथा– आयुर्घृतमिति। – अभिधा., पृष्ठ 16